संस्कृत
पर
सर्वोच्च न्यायालय

size: 5.5x8.5"

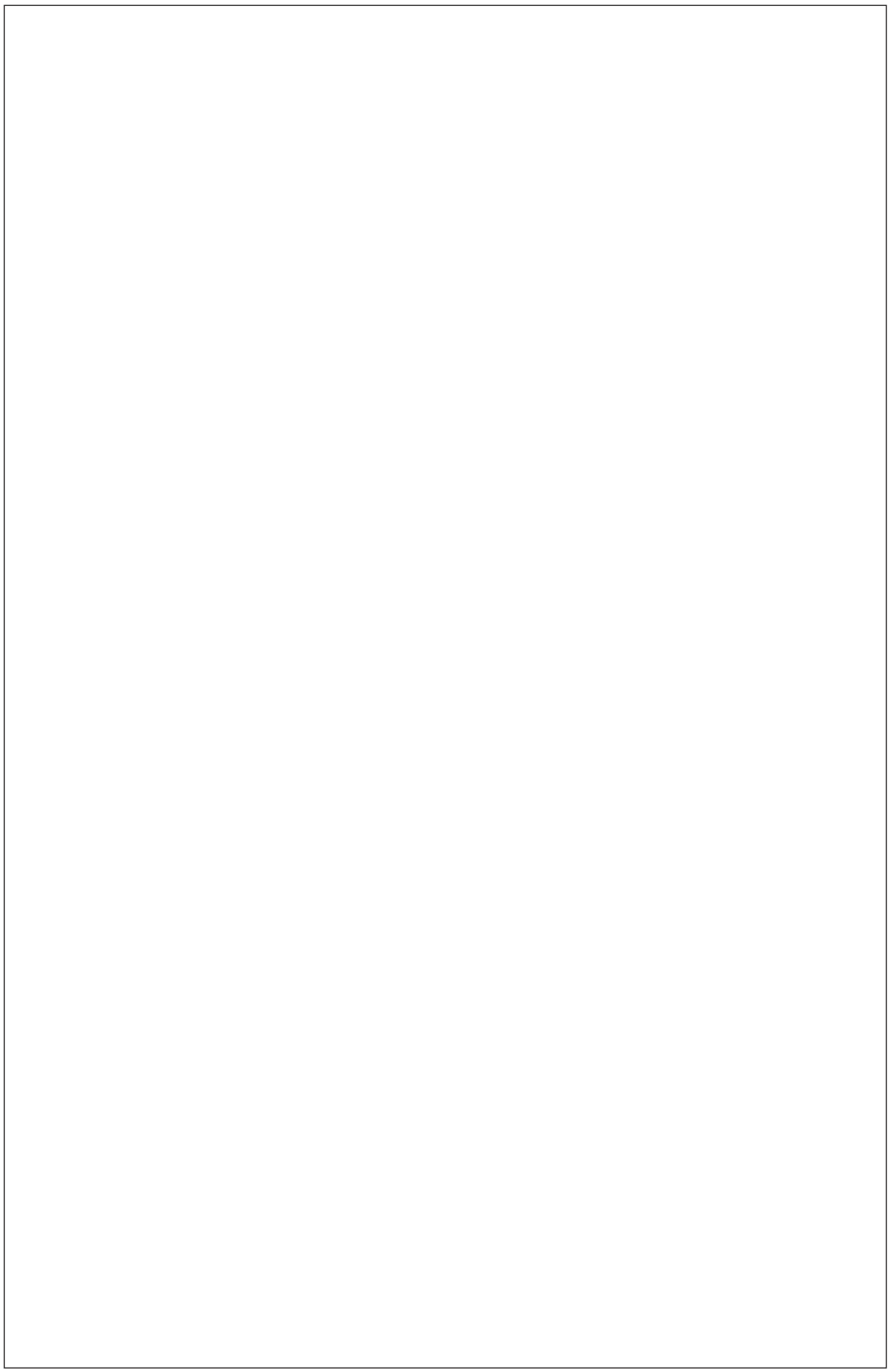

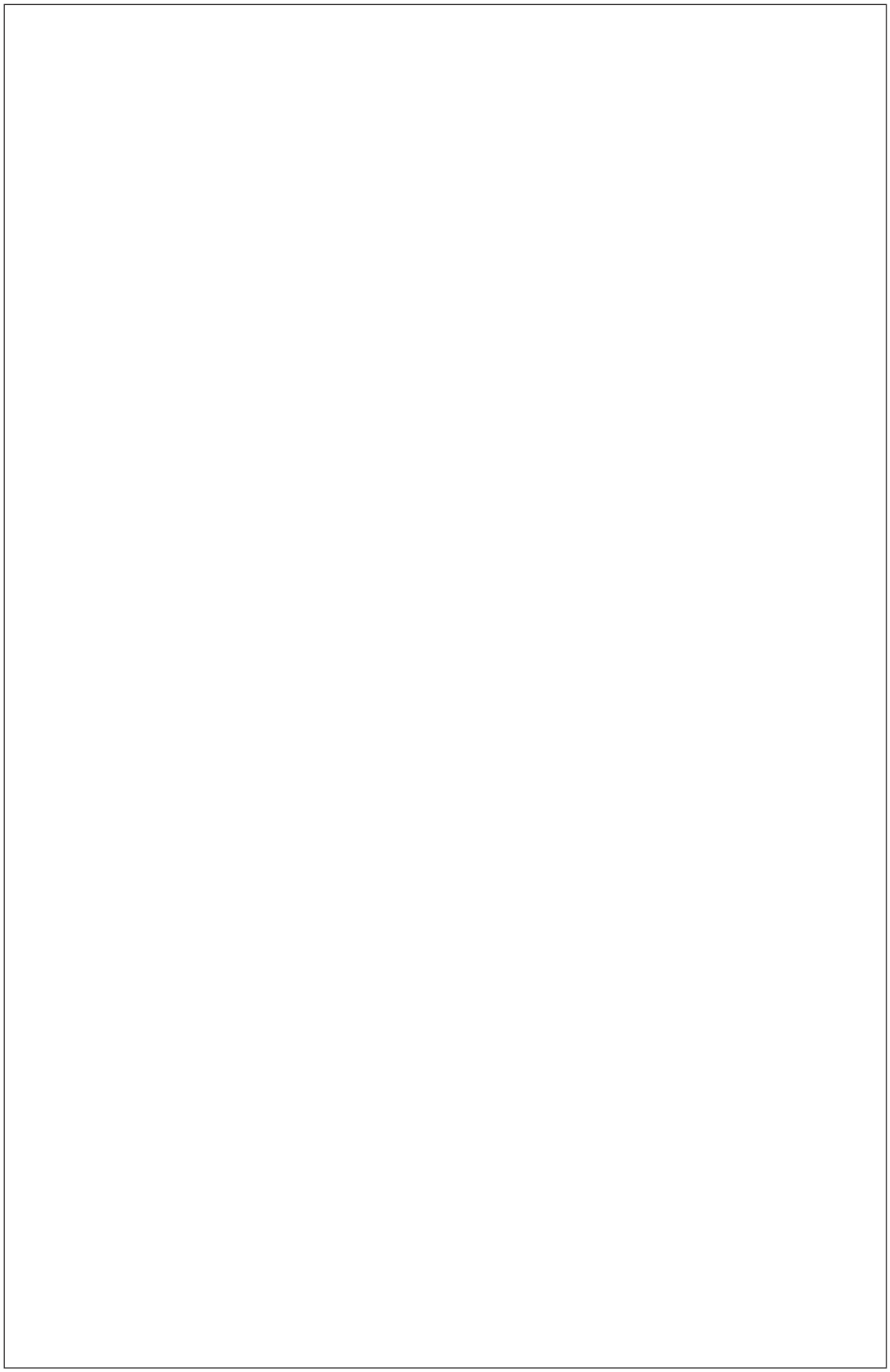

सामयिक प्रपत्र – 8

संस्कृत
पर
सर्वोच्च न्यायालय

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation

प्रतिष्ठान की नीति के तहत हम इस पुस्तक की विषयवस्तु के संदर्भ सहित पूर्ण या आंशिक प्रयोग को प्रोत्साहित करते हैं।

प्रकाशक
भारत नीति प्रतिष्ठान
डी–51, हौज खास, नई दिल्ली–110016 (भारत)
दूरभाषः 011–26524018
फैक्सः 011–46089365
ई–मेल : indiapolicy@gmail.com
वेबसाइट : www.indiapolicyfoundation.org

संस्करण : प्रथम, मार्च, 2015
© भारत नीति प्रतिष्ठान
ISBN: 978-93-84835-05-7

मूल्य : 50 रुपये मात्र

मुद्रकः प्रिन्ट कनेक्शन, ओखला फेस–1

अनुक्रम

	पेज नं0
प्राक्कथन	8
माननीय न्यायाधीशों का संक्षिप्त परिचय	11
निर्णय का सारांश	12
माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश	14
विशिष्ट इतिहास, क्षितिज और प्रभाव के अर्थ में मातृभाषा	

परिशिष्ट

1. संस्कृत द्वारा भारतीय मानस की विदेशी प्रभावों से मुक्ति	23
2. कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग के रूप में संस्कृत	26
3. संस्कृत में ज्ञान निरूपण व कृत्रिम बुद्धिमत्ता	30
4. संस्कृत आयोग 1956 के रिपोर्ट के कुछ अंश	32

सर विलियम जोंस (1746–1794) एक अंग्रेज़ भाषा–शास्त्री, प्राच्यवादी और न्यायविद् थे। कोलकाता में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करते समय वे प्राचीन भारत के सम्बंध में ज्ञान अर्जित करने लगे और एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की। वे अपनी इस प्रस्तावना के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से जाने जाते हैं कि अनेक भाषाओं का उद्गम स्रोत एक ही है। उनकी विद्वता ने पूर्वी इतिहास, भाषा और संस्कृति में व्यापक रुचि उत्पन्न करने में सहायता की और इसने भाषा विज्ञान शोध में नए मार्ग प्रशस्त किए।

प्राक्कथन

सभ्यताओं का उत्थान और पतन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। सभ्यताएं विकसित होती हैं और लुप्त भी होती हैं। मानव इतिहास अनेक सभ्यताओं के ह्रास एवं पतन का साक्षी है। लेकिन वे अपने काल की कला, संस्कृति, जीवन दृष्टि एवं मूल्यों और बौद्धिक योगदान को विरासत के रूप में मानव समाज के लिए छोड़ जाते हैं। यह सब कुछ ही अतीत के लोगों और उनकी संस्कृतियों को जानने में हमारी सहायता करता है। किंतु कुछ सभ्यताएं ऐसी हैं, जो कभी लुप्त नहीं होती। उनकी प्रगति धीमी हो सकती है, किंतु उनका विनाश नहीं होता। हिन्दू सभ्यता इसका अनुपम उदाहरण है। हमारी सभ्यता व्यापक बौद्धिक निधि से परिपूर्ण है और उसकी विषयवस्तु सार्वभौमिक और देश–कालातीत है। वस्तुतः यह इसका गुणात्मक पक्ष है।

विचार, दर्शन और जीवन मूल्यों का सतत आविष्कार एवं परिष्कार होता रहा जिसने सभ्यता को भौतिकवादी नहीं बनने दिया। वैचारिक और बौद्धिक पराक्रम हमेशा ही भौतिक और पदार्थवादी उपक्रमों पर अपनी श्रेष्ठता बनाए रखा है। यही कारण है कि अत्यंत विपरीत एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हिन्दू सभ्यता की पहचान और अस्तित्व बना रहा। असहिष्णु एवं सांस्कृतिक और बौद्धिक स्वतंत्रता की विरोधी ताकतों द्वारा संगठित आक्रमणों के बावजूद हिन्दू सभ्यता टिकी रही। नालंदा और तक्षशिला को जला दिया गया। लाखों पुस्तकों को जलाकर भस्म कर दिया गया। बौद्धिक परम्पराओं को क्रूरतापूर्वक दबाने की कोशिश की गई। इन सबके बावजूद विचार और दर्शन को मध्ययुगीन बहशियानापन भी समाप्त नहीं कर सका। आक्रांताओं के बौद्धिकता–विरोधी उपक्रम को निष्फल कर हमने बौद्धिकता को जीवित रखा। तथा ज्ञान के प्रसार और संरक्षण की अपनी मौखिक परम्परा को सुदृढ़ किया।

यूरोप केंद्रित बौद्धिक वर्ग के लिए भारतवर्ष एक शताब्दी पुराना भी नहीं है। उनकी संकीर्ण दृष्टि भारतीय जीवन मूल्यों को कभी समझ नहीं सकती है। हमारे इतिहास का मूल्यांकन केवल हमारे पूर्वजों के बौद्धिक–दार्शनिक योगदानों को समझकर ही सम्भव है। यह योगदान हमें विश्व की सभ्यताओं में सम्मानजनक स्थान प्रदान करता हैं। वेद, पुराण और सर्वोच्च मानव–मूल्यों से परिपूर्ण असंख्य ग्रंथ संस्कृति, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विषयवस्तु, काल–देश और ब्रह्मांडीय शक्तियों एवं चेतनाओं के विभिन्न आयामों को परिभाषित करते हैं। संस्कृत ही वह भाषा है जो हमारे विशाल बौद्धिक निधि की भाषा है। संस्कृत, दार्शनिक प्रवृत्तियों, संस्कृति और मानव–मूल्यों को परिवर्तित संदर्भ और काल में व्याख्यायित करने तथा प्रगतिशील विकास के रूप में प्रस्तुत करने के अनन्त अवसर प्रदान करती है। संस्कृत की प्राचीनता ने इसे जहां ऋषि मुनियों की रचनाओं की भाषा बनाया है वहीं इसमें निहित वैज्ञानिकता ने इसे आधुनिकता का आधार बना दिया है। यह भाषा आधुनिक काल के कम्प्यूटरों के वाक्य–विन्यास के लिए सर्वाधिक अनुकूल भाषा है। क्या यह विडंबना नहीं है कि इस भाषा को जाति, धर्म और निश्चित काल से जोड़ कर देखा जाए? वास्तव में संस्कृत में वैश्विक भाषा बनने का अदभुत सामर्थ्य है। यह तभी संभव है, जबकि हम इसकी क्षमता और महत्ता को ईमानदारी से पहचानें। पश्चिम परस्त प्रतिक्रियावादी ताकतों ने संस्कृत की तुलना अरबी, फारसी जैसी भाषाओं से कर इसके प्रभाव और महत्व का अवमूल्यन करने का निरंतर प्रयास किया है। इसे स्कूलों के पाठ्यक्रमों से हटाने या उपेक्षित स्थान देकर संकीर्णता और हीनता के दायरे में रखना एक सोचा समझा बौद्धिक उपक्रम है और यह औपनिवेशिक काल से जारी है। इसने नकारात्मक धारणा को जन्म दिया है।

भारत नीति प्रतिष्ठान भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संस्कृत भाषा को लेकर दिए गए एक ऐतिहासिक निर्णय को प्रकाशित कर रहा है। हम आशा करते हैं कि यह निर्णय संस्कृत के पठन–पाठन के सम्बंध में अनेक प्रकार की धारणाओं और मिथ्या आरोपों को समाप्त करने में सहायता

प्रदान करेगा। इस निर्णय का हिन्दी में अनुवाद करने के लिए प्रतिष्ठान श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डे का आभारी है। सुधीर कुमार सिंह और शिव कुमार भी तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रो. राकेश सिन्हा
मानद निदेशक
भारत नीति प्रतिष्ठान

9 मार्च, 2015

"रिट याचिका संख्या–1989 का 299, निर्णय की तिथि 4–10–1994, याचिकाकर्त्ता– श्री संतोष कुमार और अन्य, प्रतिवादी–सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, न्यायपीठ– माननीय न्यायाधीश श्री बी एल हंसारिया और माननीय न्यायाधीश श्री कुलदीप सिंह।"

माननीय न्यायाधीशों का संक्षिप्त परिचय

माननीय न्यायाधीश श्री बी एल हंसारिया

बनवारी लाल हंसारिया ने 1962 में असम बार काउंसिल में अधिवक्ता के रूप में प्रवेश किया और वे अगस्त 1969 से अप्रैल 1971 तक जे बी लॉ कॉलेज, गोवाहाटी में प्रवक्ता के पद पर भी रहे। वे 1971 में जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्त हुए। वे असम सरकार के न्यायिक विभाग में 1976 से 1979 तक सचिव पद पर और असम प्रशासनिक ट्रिब्युनल के सदस्य के रूप में कार्यरत रहे। उन्होंने कानून पर अनेक पुस्तकें और लेख लिखे हैं। वे 1979 में गोवाहाटी उच्च न्यायालय में स्थाई न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किये गये और तत्पश्चात 1990 में उड़ीसा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अंत में 1993 में वह भारत के सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश बने।

माननीय न्यायाधीश श्री कुलदीप सिंह

न्यायाधीश कुलदीप सिंह नवम्बर 1959 में पंजाब उच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में नामांकित हुए और पंजाब यूनिवर्सिटी लॉ कॉलेज में 1960 से 1971 तक अंशकालिक प्रवक्ता के रूप में कार्यरत रहे। वे 1971 से 1982 तक केंद्र सरकार की ओर से पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय चंडीगढ़ में सीनियर स्टैंडिंग काउंसल और 1987 में पंजाब के एडवोकेट जनरल बने। वे अगस्त 1987 से भारत के एडिशनल सॉलिसिटर जनरल भी रहे। वे 1976 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन के अध्यक्ष चुने गये। न्यायाधीश कुलदीप सिंह 1988 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त हुए और 1996 में पदमुक्त हो गये।

निर्णय का सारांश

न्यायपीठ ने यह देखा

1 हमारे मन में इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि एक वैकल्पिक विषय के रूप में अकेले संस्कृत का शिक्षण करना किसी भी प्रकार से धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध नहीं है। वास्तव में, हमारे संविधान के अनुच्छेद 351 में संस्कृत को प्रोन्नत करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। यह अनुच्छेद जहां एक ओर हिन्दी के प्रसार को प्रोत्साहित करने की बात करता है, वहीं इसमें यह भी प्रस्ताव है कि हिन्दी, जहां भी अनिवार्य या वांछित हो, अपनी शब्दावली मूलतः संस्कृत से ग्रहण करेगी (पैरा 19)।

2 संस्कृत को बढ़ावा देना इसलिए भी अनिवार्य है, क्योंकि यह आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भाषाओं में से एक है (पैरा 19)। न्यायपीठ ने भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों को उद्धृत कियाः

''यदि मुझसे पूछा जाए कि भारत की महानतम पूंजी और धरोहर क्या है, तो मैं बिना झिझक के यह कहूंगा कि यह संस्कृत भाषा और साहित्य तथा इसमें निहित सभी कुछ है। यह भव्य धरोहर है, और जब तक यह विद्यमान है और हमारे लोगों को प्रभावित कर रही है, तब तक भारत की मूल प्रतिभा सतत बनी रहेगी (पैरा 13)।''

3 यह सर्वविदित है कि संस्कृत सभी भारतीय आर्य भाषाओं की जननी है। यही वह भाषा है जिसमें वेद, पुराण और उपनिषदों की रचना हुई और इसी भाषा में कालिदास, भवभूति, वाणभट्ट और दण्डी ने अपने शास्त्रों की रचना की है। शंकराचार्य, रामानुज, माध्वाचार्य, निम्बार्क और वल्लभाचार्य के लिए अपनी शिक्षाओं में भारतीय संस्कृति को पिरो पाना सम्भव नहीं हुआ होता,

यदि उनके पास अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के माध्यम के रूप में संस्कृत भाषा नहीं रही होती (पैरा 11)।

4 फलस्वरूप न्यायपीठ इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर को पोषित करने के महत्व को देखते हुए, और क्योंकि सरकारी शिक्षानीति ने भी संस्कृत के अध्ययन की आवश्यकता को रेखांकित किया है, इसलिए हमारी दृष्टि में अकेले संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना किसी भी प्रकार से हमारे धर्मनिरपेक्षता के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं हैं (पैरा 20)।

5 अतः न्यायपीठ केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् को संस्कृत भाषा को एक वैकल्पिक विषय के रूप में विचाराधीन पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का निर्देश देती है (पैरा 21)।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश

विशिष्ट इतिहास, व्यापकता और प्रभाव के अर्थ में मातृभाषा[1]

''कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर अपने कक्ष में अध्ययनरत थे। एक व्यथित अंग्रेज सैनिक ने अध्ययन–कक्ष में प्रवेश किया और उन पर आरोप लगाया कि वो युद्ध से उत्पन्न उस मानसिक आघात को अनुभव नहीं कर सकते जिसका अनुभव वह सैनिक और उसके जैसे अनेक व्यक्ति जर्मन सैनिकों से लड़ते हुए कर रहे हैं। प्रोफेसर ने युवा सैनिक से शांतभाव से पूछा कि वह किसके लिए युद्ध कर रहा है? सैनिक ने तुरंत उत्तर दिया कि देश की रक्षा करने के लिए। अब प्रोफेसर यह जानना चाहते थे कि वह देश क्या है जिसके लिए वह अपना रक्त बहाने के लिए तत्पर है। सैनिक ने उत्तर दिया कि देश की भूमि तथा उस पर रहने वाले लोग। पुनः दूसरे प्रश्नों के उत्तर में उसने कहा कि केवल इतना ही नहीं वरन् देश की संस्कृति भी वह वस्तु है, जिसकी वह रक्षा करना चाहता है। प्रोफेसर ने शांतभाव से कहा कि वह स्वयं भी उसी संस्कृति को पोषित करने में लगा हुआ है। सैनिक शांत हो गया और प्रोफेसर के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए अपने देश की सांस्कृतिक धरोहर की और अधिक जोर से रक्षा करने का प्रण लेकर चला गया। यह द्वितीय विश्वयुद्ध के उस समय की घटना है, जब संपूर्ण इंग्लैंडवासी अपने देश के अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने–अपने ढंग से योगदान देते हुए इंग्लैंड की अंतिम विजय के लिए संघर्षरत थे।''

यह घटना पश्चिमवासियों के लिए संस्कृति के महत्व को इंगित करती है। ''हम भारत के लोग'' भी अपने प्राचीन देश की सांस्कृतिक धरोहर को सदैव

[1]शीर्षक संपादकों द्वारा दिया गया है।

अत्यन्त सम्मान से देखते रहे हैं। और यह मानते हैं कि हमारी धरोहर के संरक्षण के लिए संस्कृत का अध्ययन निसंदेह अनिवार्य है। यदि हम संस्कृत के अध्ययन को निरुत्साहित करते हैं, तो हमारी संस्कृति की निरंतर बहती धारा सूख जाएगी। यह स्थिति तब और भी असहनीय है जबकि परिषद् के लिए खड़े हुए महान्यायाभिकर्ता श्री तुलसी, संस्कृत को परिषद् के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने के विरुद्ध यह तर्क दें कि यदि केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् (संक्षेप में 'परिषद्') ऐसा करे तो उसे अरबी और फारसी भाषा के शास्त्रीय भाषा होने के कारण शिक्षण की सुविधाएं भी प्रदान करनी पड़ेगी। परिषद् के इसी तर्क के आधार पर 19–7–1994 को जब यह मामला हमारे सम्मुख सुनवाई के लिए आया था, हमारे द्वारा अभिव्यक्त इन विचारों को, कि संस्कृत को संविधान की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट असमिया, बंगाली, आदि भाषाओं के साथ पाठ्यक्रम में एक वैकल्पिक विषय के रूप में सम्मिलित करना चाहिए, क्योंकि संस्कृत भी आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट एक भाषा है, प्रत्यक्षतः स्वीकार नहीं कर सकने की स्थिति प्रदर्शित कर रहा है। संस्कृत को पाठ्यक्रम से बाहर रखने की इच्छा केवल यहीं नहीं रुकती वरन् परिषद् यह भी तर्क प्रस्तुत करती है कि यदि संस्कृत को स्वीकार कर लिया गया तो अन्य भाषाओं जैसे कि फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं को भी अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना पड़ेगा। बात यहीं समाप्त नहीं हुई बल्कि महान्यायाभिकर्ता विरोध में यहां तक भी कह गए कि परिषद् के विचार में इस स्थिति में लेप्चा, ऐसी भाषा जिसके बारे में अनेक भारतीयों ने सुना भी नहीं होगा, को भी शिक्षण में सम्मिलित करना होगा।

हम परिषद् जैसे जिम्मेदार संगठन से, जिसके पास देश के युवाओं, जिनके हाथ में देश का भविष्य होता है, को शिक्षित करने जैसी भारी जिम्मेदारी है, इस स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते। संस्कृत के अध्ययन के बिना भारतीय दर्शन, जिसमें हमारी सांस्कृतिक धरोहर सन्निहित है, को समझना असम्भव है।

उठाया गया यह प्रश्न अत्यन्त महत्व का है और इसके उपयुक्त उत्तर के

लिए हमें सर्वप्रथम यह समझना होगा कि हमारे नीति निर्धारकों ने संस्कृत के महत्व के सम्बंध में क्या कहा है। तत्पश्चात हम अपने शैक्षिक आचारों में संस्कृत के स्थान का स्वयं मूल्यांकन कर सकेंगे और अंततः यह देख पाएंगे कि क्या वास्तव में संस्कृत का शिक्षण धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध है?

संस्कृत के रूप में हमारी शिक्षा नीति

शिक्षा परिषद् के पाठ्यक्रम में संस्कृत को माध्यमिक स्तर पर पढ़ाने के सन्दर्भ में एक वैकल्पिक विषय के रूप में रखने के सम्बंध में निर्णय करने से पूर्व हमारे लिए यह उपयुक्त होगा कि हम शिक्षा के महत्व पर मूलरूप से दृष्टिपात करें। इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा उन्नी कृष्णनन मामले में न्यायाधीशों ने बहुमत से शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया था इस केस में दिये गये निर्णय के परिदृश्य में हमारे लिए इस बिन्दु पर और अधिक बल देना अनिवार्य नहीं रह जाता। यहां यह उल्लेखित करना ही पर्याप्त होगा कि न्यायाधीश मोहन (बहुमत पक्ष के एक न्यायाधीश) ने उस निर्णय में क्या कहा था। विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, शिक्षा, जीवन जीने और वर्तमान जीवन तथा जीवन के पश्चात के समय को समझने की तैयारी है। सार रूप में कहें तो शिक्षा सामाजिक और राजनीतिक आवश्यकता है। उन्होंने यह भी देखा कि विजय प्राप्ति, शांति का संरक्षण, उन्नति की प्राप्ति, सभ्यता का निर्माण, और इतिहास की रचना युद्धभूमि में नहीं वरन् शैक्षिक संस्थानों, संस्कृति के उपजाऊ स्थल में ही की जा सकती है। अतः शिक्षा को प्रज्ञा प्रदायी और मानवीय गरिमा प्रदायी के रूप में स्वीकार किया जाता है। (उन्नी कृष्णनन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1993 ISSC 65)।

माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षण सम्बंधी इन मुकदमों के आधार पर अब हम शिक्षा के महत्व पर इसके प्रारम्भिक चरणों के सम्बंध में कुछ कह सकते हैं। यह स्वीकृत तथ्य है कि शिक्षा सम्पूर्ण एवं गहन जीवन की आधारशिला का निर्माण करती है और इसलिए शिक्षा को जिज्ञासा की चिन्गारी को संचेत ढंग से जीवित रखना चाहिए और अवसर आते ही इस चिन्गारी को सुंदर चमकीली ज्योति के रूप में परिवर्तित करने के अनुकूल होना चाहिए। कहा

मिलेगा। इस प्रयास के फलस्वरूप संस्कृत के गहन अध्ययन की सुविधाओं का विकास होगा।

यह ध्यान रखना रुचिकर होगा कि विलियम जोंस, 20वीं शताब्दी के सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्तियों में से एक थे और 1785 में विलियम फोर्ट बंगाल की तत्कालीन याय व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय में एक न्यायाधीश बनकर आए थे। कालान्तर में उनके अन्दर संस्कृत पढ़ने के प्रति रुचि उत्पन्न हुई और यह रुचि इतनी प्रबलता तक पहुंची कि छह वर्षों के भीतर वे न केवल संस्कृत के विद्वान हो गए बल्कि उन्होंने कालिदास की कृति शकुन्तला का अनुवाद भी कर दिया। इस घटना के लगभग 200 वर्षों के पश्चात वर्तमान में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने पुनः संस्कृत के महत्व पर प्रकाश डाला और सुनिश्चित किया कि हमारे राष्ट्रीय जीवन में संस्कृत को उचित स्थान मिल सके।

हमारे शैक्षिक आचार में संस्कृत का स्थान

यह सर्वविदित है कि संस्कृत सभी भारत आर्य भाषाओं की जननी है। यही वह भाषा है जिसमें वेदों, पुराणों और उपनिषदों की रचना हुई है और इसी भाषा में कालिदास, भवभूति, वाणभट्ट और दण्डी ने अपने शास्त्रों की रचना की है। शंकराचार्य, रामानुज, माध्वाचार्य, निम्बार्क और वल्लभाचार्य के लिए अपनी शिक्षाओं में भारतीय संस्कृति को पिरो पाना सम्भव नहीं हुआ होता, यदि उनके पास अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के माध्यम के रूप में संस्कृत भाषा नहीं रही होती (पैरा 11)।

भारत सरकार द्वारा गठित संस्कृत आयोग ने 1957 में प्रस्तुत अपनी एक रिपोर्ट में संस्कृत के महत्व के सम्बंध में अर्थपूर्ण टिप्पणियां कीं। हमारे लिए आयोग के सम्पूर्ण निर्णय को विस्तार से उल्लेखित करने की आवश्यकता नहीं है। उद्देश्यपूर्ति के लिए आयोग की रिपोर्ट के कुछ ऐसे अंशों को उद्धृत करना ही पर्याप्त है, जिसमें संस्कृत के गुण, महत्व, विषयवस्तु तथा शक्ति के सम्बंध में बताया गया है। रिपोर्ट के पैरा 71 में कहा गया है कि संस्कृत विश्व की महानतम भाषाओं में से एक है और यह केवल भारत की ही नहीं

जाता है कि जीवन के आरम्भिक चरण में प्राप्त शिक्षा ही बच्चों या वयस्कों में चारों ओर के विश्व के प्रति सम्बंध स्थापित करने का विस्तार प्रदान करती है, और विश्व की वस्तुओं के प्रति, विश्व के व्यक्तियों के प्रति और विश्व चिन्तन के प्रति स्थापित प्रत्येक नवीन एवं लाभकारी सम्बंध के फलस्वरूप युवाओं का जीवन और अधिक समृद्ध तथा व्यापक होता है। यह प्रारम्भिक शिक्षा ही है जो छात्र को विश्व चिन्तन और अनुचिन्तन के प्रति अनावृत्त करने के माध्यम से उनके मस्तिष्क को व्यापक बनाती है। शिक्षा का यह प्रकार्य ही युवाओं को अच्छे जीवन की झलक प्रदान कर सकता है और उन्हें उत्कृष्ट आदर्शवाद की ओर प्रेरित कर सकता है।

अब हम केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकृत शिक्षा–नीति का खाका खींच सकते हैं। इस संबंध में हमारे लिए सरकार द्वारा 1968 और 1986 में बनाई गई राष्ट्रीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर विचार करना ही पर्याप्त होगा। यहां हम पुनः स्वयं को संस्कृत के सन्दर्भ में इन शैक्षिक नीतियों में प्रस्तुत विचारों तक ही सीमित रखेंगे। 1968 की नीति में संस्कृत भाषा के सम्बंध में अग्रलिखित विचार प्रस्तुत किए गए हैं–

''भारतीय भाषाओं के विकास में संस्कृत के विशेष महत्व और देश की सांस्कृतिक एकता में प्रदत्त आधारभूत योगदान को ध्यान में रखते हुए विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में इसके शिक्षण के लिए पर्याप्त सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। तथा आधुनिक भारतीय दर्शन के प्रथम और द्वितीय स्तर के चरणों पाठ्यक्रमों के उन सोपानों के लिए जहां ऐसा ज्ञान लाभदायक है, संस्कृत के अध्ययन को सम्मिलित किया जाना चाहिए।''

इस सम्बंध में 1986 की शिक्षा नीति के पैरा 5.33 में निम्न विचार प्रस्तुत किए गए हैं–

''संस्कृत शिक्षण से भारत में विद्या, मानविकी और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में शोध को पर्याप्त सहायता मिलेगी। ज्ञान के संश्लेशण की आवश्यकता पूर्ण करने में अन्तर–विषयक शोध को बढ़ावा मिलेगा। भारत के प्राचीन ज्ञान कोश की खोज और समकालीन यथास्थितियों से इसे जोड़ने में बल

वरन् एशिया के एक बड़े भाग की उत्कृष्ट शास्त्रीय भाषा है। इसी रिपोर्ट के पैरा 73 में कहा गया है कि भारतीय लोग और भारतीय सभ्यता संस्कृत की गोद में ही उत्पन्न हुए हैं और यह भारतीयों के ऐतिहासिक विकास के साथ–साथ अग्रसर हुई और भारतवासियों के उत्कृष्ट विचारों और संस्कृति में प्रतिफलित होते हुए वर्तमान में भारत के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए एक अमूल्य धरोहर के रूप में स्थापित हुई है। फिर, रिपोर्ट के पृष्ठ 74 के संस्कृत के 'महान मानसिक और आधुनिक जुड़ाव' को स्पष्ट किया गया है और इसे ग्रीक और लैटिन भाषा की बड़ी बहन तथा अंग्रेजी, फ्रैंच और रसिया की चचेरी बहन के रूप में उल्लेखित किया गया है। अब हमारे लिए संस्कृत भाषा के हमारे राष्ट्रीय आचार में महत्व पर और अधिक विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के निम्न शब्द ही सम्पन्न कर देते हैं–

''यदि मुझसे पूछा जाए कि भारत की महानतम पूंजी और धरोहर क्या है, तो मैं बिना झिझक के यह कहूंगा कि यह संस्कृत भाषा और साहित्य तथा इसमें निहित सभी कुछ है। यह भव्य धरोहर है, और जब तक यह विद्यमान है और हमारे लोगों को प्रभावित कर रही है, तब तक भारत की मूल प्रतिभा सतत बनी रहेगी (पैरा 13)।''

क्या संस्कृत का शिक्षण धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध है?

19–7–1994 के एक आदेश में हमारे द्वारा प्रस्तुत विचारों की दृष्टि में संस्कृत शिक्षण के आरम्भ करने को लेकर परिषद की असमर्थता के सम्बंध में महान्यायाभिकर्ता द्वारा प्रस्तुत तीन आपत्तियों में से जिस आपत्ति को गम्भीरता से लिया जा सकता है उसके अनुसार, यदि संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में सम्मिलित कर लिया जाए तो अरबी और फारसी को भी सम्मिलित करना पड़ेगा। अन्य दो आपत्तियां कि तद्नुसार फ्रैंच और जर्मन और लेरचा जैसी भाषा को भी पाठ्यक्रम में स्थान देना पड़ेगा, हमारे लिए स्पष्ट कारणों से किसी महत्व की नहीं है।

सर्वप्रथम इस आपत्ति पर विचार करना आवश्यक है जिसमें कहा गया है कि

अगर संस्कृत को वैकल्पिक भाषा के रूप में पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया तो कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि ऐसा करना धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध काम करने जैसा होगा। ध्यान रहे, एस आर बोम्मई बनाम भारत संघ के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की एक पीठ ने धर्मनिरपेक्षता को संविधान के मूल ढांचे के एक अंग के रूप में स्वीकार किया है। स्पष्टतः ऐसे किसी भी निर्देश (2 (1994) 3 SSCI) को पारित नहीं किया जा सकता जो कि हमारे संविधान के अनिवार्य तत्व (धर्मनिरपेक्षता) के विरुद्ध है।

मौजूदा स्थिति से निपटने के लिए यह आवश्यक है कि बोम्मई मुकद्मे में विद्वान न्यायाधीशों के विचार के आलोक में इस बात की विस्तृत विवेचना की जाए कि धर्मनिरपेक्षता की मूल अनिवार्यता क्या है। हमारे लिए यह देखना भर पर्याप्त होगा कि इस सम्बंध में कुछ विद्वान न्यायाधीशों ने क्या कहा है। न्यायाधीश सावन्त, जिससे हम में से एक (न्यायाधीश कुलदीप सिंह) सहमत हैं, ने रिपोर्ट के पैरा 147 में श्री एम सी सीतलवाड के पटेल स्मृति आख्यानों (1965) में धर्मनिरपेक्षतावाद के सम्बंध में प्रस्तुत विचारों को उद्धृत किया है। सीतलवाड द्वारा उल्लेखित प्रेक्षणों में से एक के अनुसार राज्य धर्म के विरुद्ध नहीं है, बल्कि स्वयं को वह धार्मिक मामलों से पृथक रखता है। पैरा 148 के अगले मत के अनुसार राज्य का धर्म के प्रति सहिष्णु होने का तात्पर्य उसका धार्मिक होना या फिर धर्म आधारित होना नहीं होता। रामास्वामी न्यायाधीश पैरा 179 में कहते हैं कि धर्मनिरपेक्षता बौद्धिक संकायों के अभ्यास से उत्पन्न आस्था को निरूपित करती है और यह चहुमुखी मानव उन्नति और सांस्कृतिक और सामाजिक प्रगति और वास्तव में स्वयं मानव की उत्तरजीविता के लिए आदेशात्मक आवश्यकताओं को पहचानने के योग्य बनाती है।

प्रसंगवश यह देखना लाभप्रद होगा कि न्यायाधीश एच.आर. खन्ना के अनुसार धर्मनिरपेक्षतावाद न तो ईश्वर विरोधी है और न ईश्वर समर्थक; यह आस्थावादियों और निरीश्वरवादियों, सभी को समान भाव से देखना है।

उनके अनुसार, धर्मनिरपेक्षता धार्मिक आस्थावादिता का प्रतिपक्ष नहीं है। वह ऐसे विचार को अस्वीकार कर देते हैं जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति आस्थावान हिन्दू या मुस्लिम है, तो वह धर्मनिरपेक्ष नहीं हो सकता है। विवेकानन्द तथा गांधी पक्के हिन्दू थे फिर भी उनका सम्पूर्ण जीवन तथा शिक्षण धर्मनिरपेक्षतावाद का पोषक था (यह लेख देखें: ''धर्मनिरपेक्षता की आत्मा'', भारत में धर्मनिरपेक्षता : दुविधा और चुनौतियां, सं. श्री एम एम संकलिदार)। हम यहां संस्कृत आयोग की रिपोर्ट के अध्याय 4 में उद्धृत ''संस्कृत और राष्ट्रीय एकता'' विषय पर विचारों को देखने की अनुशंसा करते हैं। आयोग इस प्रसंग में सर्वप्रथम यह कहता है कि संस्कृत ''भारतीय संस्कृति और सभ्यता को मूर्त रूप'' प्रदान करती है। फिर आयोग कहता है कि भारतवासी संस्कृत को इस महान देश के विभिन्न लोगों को एक सूत्र में बांधने वाले तत्व के रूप में देखते हैं। इस तथ्य का अनुभव आयोग ने केरल से कश्मीर और कामरूप से सौराष्ट्र तक की अपनी यात्रा में किया और इसे अपनी सबसे बड़ी खोज के रूप में वर्णित किया। आयोग ने अपनी यात्रा के दौरान पाया कि यद्यपि इस देश के लोग अनेक ढंगों से एक दूसरे से भिन्न हैं किन्तु वे सभी स्वयं को एक साझी धरोहर में हिस्सेदार पाकर गर्व का अनुभव करते हैं; और वह धरोहर सुस्पष्ट रूप से संस्कृत रूपी धरोहर है। आयोग के अनुसार, उसके सम्मुख प्रस्तुत एक गवाह यहां तक कहता है कि यदि संस्कृत आयोग राज्य पुनर्गठन आयोग से पहले आया होता तो हम राष्ट्रीय जीवन के अनेक झगड़ों से बच गए होते। (पृष्ठ संख्या 80 और 81)।

उपरोक्त वृत्तान्त के आधार पर यह सर्वविदित है कि संस्कृत सभी भारत आर्य भाषाओं की जननी है। यही वह भाषा है जिसमें वेदों, पुराणों और उपनिशदों की रचना हुई है और इसी भाषा में कालिदास, भवभूति, वाणभट्ट और दण्डी ने अपने शास्त्रों की रचना की है। शंकराचार्य, रामानुज, माध्वाचार्य, निम्बार्क और वल्लभाचार्य के लिए अपनी शिक्षाओं में भारतीय संस्कृति को पिरो पाना सम्भव नहीं हुआ होता, यदि उनके पास अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के माध्यम के रूप में संस्कृत भाष नहीं रही होती (पैरा 11)।

हमारे मन में इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि एक वैकल्पिक विषय के रूप में अकेले संस्कृत का शिक्षण करना किसी भी प्रकार से धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध नहीं है। वास्तव में, हमारे संविधान का अनुच्छेद 351 संस्कृत को प्रोन्नत करने की आवश्यकता पर बल देता है। यह अनुच्छेद जहां एक ओर हिन्दी के प्रसार को प्रोत्साहित करने की बात करता है, वहीं इसमें यह भी प्रस्ताव है कि हिन्दी, जहां भी अनिवार्य या वांछित हो, अपनी शब्दावली मूलतः संस्कृत से ग्रहण करेगी (पैरा 19)।

संस्कृत को बढ़ावा देना इसलिए भी अनिवार्य है, क्योंकि यह आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भाषाओं में से एक है (पैरा 19)।

अतः हम यह कहते हुए निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर को पोषित करने के महत्व को देखते हुए, और क्योंकि सरकारी शिक्षा नीति ने भी संस्कृत के अध्ययन की आवश्यकता को रेखांकित किया है, इसलिए हमारी दृष्टि में अकेले संस्कृत को, जबकि अरबी और फारसी को यह लाभ नहीं दिया जा सकता, संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना किसी भी प्रकार से हमारे धर्मनिरपेक्षता के मूल लक्षण के विरुद्ध नहीं है। अतः परिषद द्वारा उठाई गई प्रथम आपत्ति में कोई बल नहीं है। उपरोक्त उल्लेखित वस्तुस्थिति के आधार पर हम परिषद के संस्कृत भाषा को एक वैकल्पिक विषय के रूप में विचाराधीन पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का निर्देश देते हैं। पाठ्यक्रम में अनिवार्य संशोधन आज से तीन महीनों के भीतर कर लिया जाना अनिवार्य है।

निष्कर्ष : रिट याचिका स्वीकृत की जाती है। किसी पक्ष के लिए कोई मूल्य देय नहीं है।

परिशिष्ट– 1

संस्कृत द्वारा भारतीय मानस की विदेशी प्रभावों से मुक्ति[2]

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के जर्मन भाषा को हटाकर संस्कृत को लाने का विरोध एक विशिष्ट तबके के उन्हीं लोगों के द्वारा किया जा रहा है जिनके मन में भारत की आत्मा के प्रति विशेष अवमानना का भाव है। वे भारत को केवल पश्चिम की दृष्टि से ही देखते हैं। उनका उपनिवेशित मन संस्कृत के शिक्षण को विश्व–विरोधी मानता है और वे इस प्रयास को भी शीघ्रता से आरएसएस की भगवाकरण की योजना का भाग मान लेते हैं। क्या वास्तव में ऐसा है? यह प्रश्न नया नहीं है। मैकालेवादियों, मार्क्सवादियों और नेहरूवादियों की ये संतानें संस्कृत को ब्राह्मणवादी, पुरोहितवादी भाषा सिद्ध करने का अथक प्रयास करती हैं और मानती हैं कि संस्कृत का कोई प्रत्यक्ष मूल्य नहीं है।

18वीं शताब्दी में सर्वप्रथम फोर्ट विलियम ने जो उस समय की न्याय व्यवस्था के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे, संस्कृत के सम्मान का पुनरूत्थान किया। तीन शताब्दी पश्चात यही कार्य स्वतंत्र भारत के सर्वोच्च न्यायालय के कन्धों पर तब आन पड़ा, जब केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद ने संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने का विरोध किया। फलस्वरूप, न्यायाधीश बी एल हंसारिया और कुलदीप सिंह ने दृढ़तापूर्वक राष्ट्र के सम्मुख संस्कृत के महत्व को रखा।

[2] राकेश सिन्हा, द न्यू इंडियन एक्सप्रेस, 30 नवंबर, 2014

न्यायाधीशों ने अपना निर्णय द्वितीय विश्वयुद्ध की एक कहानी से प्रारम्भ किया:

''कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर अपने कक्ष में अध्ययनरत थे। तब एक व्यथित अंग्रेज सैनिक ने अध्ययन कक्ष में प्रवेश किया और उन पर आरोप लगाया कि वो युद्ध से उत्पन्न उस मानसिक आघात को अनुभव नहीं कर सकते जिसका अनुभव वह और उसके जैसे अनेक व्यक्ति जर्मन सैनिकों से लड़ते हुए कर रहे हैं। प्रोफेसर ने युवा सैनिक से शांतभाव से पूछा कि वह किसके लिए युद्ध कर रहा है? सैनिक ने तुरंत उत्तर दिया कि देश की रक्षा करने के लिए। अब प्रोफेसर यह जानना चाहते थे कि वह देश क्या है जिसके लिए वह अपना रक्त बहाने के लिए तत्पर है। सैनिक ने उत्तर दिया कि देश की भूमि तथा उस पर रहने वाले लोग। पुनः दूसरे प्रश्नों के उत्तर में उसने कहा कि केवल इतना ही नहीं वरन् देश की संस्कृति भी वह वस्तु है, जिसकी वह रक्षा करना चाहता है। प्रोफेसर ने शांतभाव से कहा कि वह स्वयं भी उसी संस्कृति को पोषित करने में लगा हुआ है। सैनिक शांत हो गया और प्रोफेसर के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए अपने देश की सांस्कृतिक धरोहर की और अधिक जोर से रक्षा करने का प्रण लेकर चला गया। यह द्वितीय विश्वयुद्ध की उस समय की घटना है, जब संपूर्ण इंग्लैंडवासी अपने देश के अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने–अपने ढंग से योगदान देते हुए इंग्लैंड की अंतिम विजय के लिए संघर्षरत थे।''

न्यायाधीशों ने अनुभव किया कि यह घटना पश्चिमवासियों के लिए संस्कृति के महत्व को इंगित करती है। ''हम भारत के लोग'' भी अपने प्राचीन देश की सांस्कृतिक धरोहर को सदैव अत्यन्त सम्मान से देखते रहे हैं। और यह मानते हैं कि हमारी धरोहर के संरक्षण के लिए संस्कृत का अध्ययन निसंदेह अनिवार्य है। यदि हम संस्कृत के अध्ययन को निरुत्साहित करते हैं, तो हमारी संस्कृति की निरंतर बहती धारा सूख जायेगी।

यह स्थिति तब और भी असहनीय है जबकि परिषद यह तर्क दे कि यदि परिषद ऐसा करे तो अरबी और फारसी भाषा के शिक्षण की सुविधा भी

उपलब्ध करानी पड़ेगी।

उत्तर प्रदेश सरकार ने अरबी और फारसी को संस्कृत के समान महत्व दिया और एक ऐसे सामाजिक दर्शन का पक्ष लिया जो विश्व के सांस्कृतिक नक्शे से ही हमारी पहचान मिटा दे। न्यायालय ने फिर सीबीएससी के इस तर्क पर प्रश्न उठाया कि फ्रैंच और जर्मन का शिक्षण संस्कृत शिक्षण के समकक्ष है। न्यायाधीशों ने कहा, 'हम परिषद्, जिसके पास देश के युवाओं, जिनके हाथ में देश का भविष्य होता है, को शिक्षित करने जैसी भारी जिम्मेदारी है, जैसे जिम्मेदार संगठन की इस स्थिति की प्रशंसा नहीं कर सकते। संस्कृत के अध्ययन के बिना भारतीय दर्शन, जिसमें हमारी सांस्कृतिक धरोहर सन्निहित है, को समझना असम्भव है।'

अरबी या जर्मन भाषा किन्हीं अन्य उद्देश्यों के लिए लाभदायक हो सकती हैं किन्तु संस्कृत से उनकी समानता निश्चित करना अत्यन्त मूर्खतापूर्ण है। इस सम्बंध में सर्वोच्च न्यायालय का आदेश संस्कृत आयोग रिपोर्ट (1957) को उद्धृत करता है जिसके अनुसार, भारतीय लोग और भारतीय सभ्यता संस्कृत की गोद में ही उत्पन्न हुए हैं और यह भारतीयों के ऐतिहासिक विकास के साथ–साथ अग्रसर हुई और भारतवासियों के उत्कृष्ट विचारों और संस्कृति में प्रतिफलित होते हुए भारत के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए अमूल्य धरोहर के रूप में वर्तमान समय तक पहुंची है।

यह भारतीय मानस को विदेशी प्रभावों से मुक्त करने की बड़ी परियोजना का एक भाग है और अन्य भाषाओं से इसकी कोई घृणा नहीं है। रुचिपूर्ण ढंग से, विदेशी प्रभाव से मुक्ति और भगवाकरण दोनों समान उद्देश्यों और अभिरुचियों के कारण एक दूसरे के पर्याय हैं।

परिशिष्ट– 2

कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग के रूप में संस्कृत[3]

यह पत्र संस्कृत भाषा की विशेषताओं को संक्षेप में प्रस्तुत करता है और संस्कृत भाषा का प्राकृतिक भाषा में प्रक्रिया अध्ययन और अनुप्रयोग में उपयोग करने का सुझाव देता है। संस्कृत के कुछ निर्दिष्ट गुणों का उपयोग कम्प्यूटर अभियान्त्रिकीय शोध के कुछ सीमान्त क्षेत्रों, मुख्यतः ए एल (AL) और ज्ञान आधारित परितन्त्र, में किया जा सकता है। प्रस्तुत विचार यह है कि संस्कृत तकनीकी साहित्य में छुपे गूढ़ अर्थ का पता लगाने के लिए एक संस्कृत आधारित संकलनकर्ता अथवा व्याख्याकर्ता का विकास किया जाना अनिवार्य है। पश्चिम में अन्य देश पहले से ही ऐसा अध्ययन प्रारम्भ कर चुके हैं और यह उपयुक्त ही होगा यदि संस्कृत अपने वांछनीय सामर्थ्य को उच्चस्तरीय तकनीकी शोध, निस्सन्देह जिसके लिए यह अन्तरतः अनुकूल है, के क्षेत्र में अपनी भूमि पर ही प्राप्त कर सके।

चाहे यह ज्ञान का प्रस्तुतिकरण हो या फिर वॉक संश्लेशण, प्राकृतिक भाषा प्रक्रिया अथवा मशीन अनुवाद, बौद्धिक अधिगम तन्त्र अथवा स्पष्ट शब्दार्थ विज्ञान संकर्षण, जटिल गणितीय समस्याएं या भाषा विज्ञान इन सभी में संस्कृत भाषा में उपलब्ध विद्यमान लेखन कार्यों तथा इसकी समृद्धता, शक्ति, सटीकता, प्रभावशीलता, संरचना, लचीलापन का उपयोग किया जा सकता है।

[3]एयरक्राफ्ट डिजाइन ब्यूरो, ए.डी.ए. (सिस्टमस्), सी.वी. रमण नगर, बैंगलुरु

संस्कृत का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि भाषा इसकी व्याकरणपूर्ण यथार्थता निश्चित करती है और अस्पष्टता से सुरक्षा प्रदान करती है; अन्यथा गलत वर्तनी और गलत उच्चारण के कारण अर्थ में परिवर्तन होना अनिवार्य हो जाता है। वास्तविक लाभ यह है कि चूंकि लिखित–वॉक प्रारूप के मध्य सममिति का सह–सम्बंध है। इसलिए द्विरूपीय आगत (input) को परिवर्तनीय ढंग से उपयोग में लाया जा सकता है। अक्षरों का विश्लेषण स्पष्ट रूप से परिभाषित अभिकथनों के सटीक स्थानों से निष्कर्षित ध्वनि उत्पादनों पर आधारित होता है और इसलिए यह समग्रता और स्पष्टता से सभी सम्भव प्रकरणों को अपने में समाहित करता है।

पाणिनी के संस्कृत व्याकरण की संरचना ने सभी क्षेत्रों और कार्यों में प्रशंसा प्राप्त की है। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि व्याकरण ध्वनि आधारित होता है। कंठ, जिह्वा, कपाल, दन्त, होंठ, नासिका आदि को विभिन्न शब्दों के उत्पत्ति स्थल माना जाता है और इस प्रकार की विश्लेषणात्मक ढंग से प्रारूपित ध्वनियों के विवेचन में पूर्व में बताए गए मानदण्डों का प्रभावशाली उपयोग किया जा रहा है।

संस्कृत में उपस्थित सम्पूर्ण तकनीकी साहित्य ''सूक्तियों'' का एक आधारभूत समुच्चय है। 'सूक्ति' लघु, सारगर्भित, बहुपयोगी वाक्यों का समूह होती है और सम्प्रत्ययों को सम्पूर्णता में पकड़ती है। इन्हें सूत्र कहा जाता है। व्याकरण के नियम भी इन्हीं सूत्रों के द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। ये व्याकरण सूत्र प्रदत्त निर्देशों या सूचनाओं, जो कि विशेष रूप से किसी विशिष्ट पक्ष के वाहक होते हैं, के संक्षेपण करते हैं। शब्द निर्माण की वैधता पर नियन्त्रण को बनाये रखने में वर्गीकरण, अनुक्रम, पूर्ववर्तिता, वरीयता, समूहीकरण, निर्देशों का उपयोग या विशेष प्रकरणों में प्रचालकों की व्याख्या के लिए स्पष्ट निर्देश, सामान्यीकरण, परिवर्तन, प्रतिबंध, विस्तार, संकीर्णन आदि आवश्यक लचीलापन प्रदान करते हैं।

वाक्य विन्यास की अनुपस्थिति संस्कृत को एक मुख्य रूप से निश्चित लाभ प्रदान करती है। शब्दार्थ विज्ञान को भी स्पष्ट रूप से स्थापित प्रक्रिया से

संकर्षित किया जा सकता है। यहां व्याकरण से भिन्न, न्यायवाक्य (तर्कशास्त्र से सम्बंधित एक शाखा) के नियम और मीमांसा (धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन) का उपयोग किया जाता है।

वर्तमान में उपलब्ध तकनीकी साहित्य की सीमा भी किसी भी अर्थ में लघु नहीं है और हमें इसका विश्लेषण निष्पक्ष और पूर्वाग्रहों से विमुक्त होकर उसकी उपयोगिता के परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए। जब इस प्रकार के अध्ययन में भी इस प्रकार की भाषा का उपयोग किया जाता है तब यह अत्यन्त उपयुक्त और मूल होता है, क्योंकि इससे प्रत्ययों को सटीक ढंग से पकड़ा जा सकता है।

संस्कृत में तकनीकी साहित्य अधिगम की 14 शाखाएं निहित हैं। ये हैं– चार वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद; छः वेदांग यथा शिक्षा, छन्द, व्याकरण निरुक्त, ज्योतिष, और कल्प; वैदिक ग्रंथों का अध्ययन, न्यायवाक्य, महाकाव्य, नैतिक संहिताएं। इन सभी में ज्ञान का अमूल्य भण्डार प्रभावी और सरल ढंग से संजोकर रखा गया है। विवादास्पद दावों और अतिश्योक्तियों से हटकर इनका निष्पक्ष अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है और जो भी मूल्यवान है उसे ग्रहण करने की आवश्यकता है।

कुमुद पावडे, लेखक, स्त्रीवादी और सामाजिक कार्यकर्ता, का जन्म 1938 में नागपुर, भारत में एक दलित परिवार में हुआ था। उनकी आत्मकथा ''अन्तःस्फोट'' उनके अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं को चित्रित करते हुए एक ऐसी दलित लड़की की कहानी कहती है, जो न केवल संस्कृत सीखना चाहती है बल्कि इसमें विद्वता भी प्राप्त करना चाहती है, ताकि वह शिक्षण कार्यों द्वारा ज्ञान को प्रदान करने के योग्य बन सके।

परिशिष्ट–3

संस्कृत में ज्ञान निरूपण व कृत्रिम बुद्धिमत्ता

विगत बीस वर्षों में प्राकृतिक भाषाओं के स्पष्ट निरूपण को लेकर काफी समय, धन और उद्यम का व्यय किया गया है ताकि उन्हें संगणकीय परिष्करण के लिये सुगम बनाया जा सके। ये प्रयास प्राकृतिक भाषाओं के वाक्य–विन्यास और अर्थ–विज्ञान द्वारा अभिव्यक्त सम्बन्धों की तार्किक सम्बन्धों से समानान्तरता स्थापित करने के लिए आवश्यक ढांचागत योजना की रचना के इर्द–गिर्द केन्द्रित रहे हैं। तार्किक सूचनाओं के आदान–प्रदान के मामले में प्राकृतिक भाषाएं बोझिल और असपष्ट होती हैं। अतः यह मान्यता व्याप्त है कि प्राकृतिक भाषाएं अनेक ऐसे विचारों के सम्प्रेषण के लिए अनुपयुक्त हैं, जिन्हें कृत्रिम भाषाएं बड़ी सूक्ष्मता और गणितीय सुदृढ़ता से सम्पन्न कर सकती हैं।

यह द्विविभाजनात्मकता भाषा–विज्ञान और कृत्रिम भाषाओं को लेकर किए गए अधिकांश कार्यों में एक आधारभूत सिद्धान्त का स्थान रखती है। किन्तु यह सत्य नहीं है। कम से कम संस्कृत एक ऐसी भाषा है जो लगभग 1,000 वर्षों की अवधि तक न केवल बोलचाल की भाषा थी बल्कि प्रचुर साहित्य की भी धनी है। अपने विपुल साहित्य के अलावा संस्कृत की अपनी सुदीर्घ दार्शनिक और व्याकरणीय परम्परा भी है, जो अदम्य रूप से ऊर्जस्वी होकर वर्तमान शताब्दी में भी अस्तित्व में है। संस्कृत के व्याकरणों की अत्यन्त उल्लेखनीय उपलब्धियों में यह बात भी गिनी जाएगी कि उन्होंने इस भाषा की शब्द–व्याख्या की ऐसी पद्धति की रचना की जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता में हो

[4] रिक ब्रिग्स, आर.आई.ए.सी.एस., नासा एम्स रिसर्च सेण्टर, मॉफेट फील्ड, कैलिफोर्निया 94305, स्प्रिंग मैगजीन 1985

रहे वर्तमान कार्यों के न केवल सार बल्कि उनके प्रारूपों के भी अनुकूल है। यह लेख इस बात को दर्शाता है कि प्राकृतिक भाषा भी कृत्रिम भाषा का कार्य कर सकती है। साथ ही, यह भी जानना आवश्यक है कि कृत्रिम भाषा के क्षेत्र में किया गया अधिकांश कार्य पिछली एक सहस्राब्दी के ज्ञान–समुच्चय का पिष्ट–पोषण ही है।[4]

परिशिष्ट–4

संस्कृत आयोग 1956 के रिपोर्ट के कुछ अंश

भारत के जीवन और उसकी परम्परा में संस्कृत की अभंग निरन्तरता सचमुच अद्‌भुत है। लिखित रूप में ऐतिहासिक निरन्तरता को अक्षुण्ण रखने की लिखित अक्षरों की चीन की प्रणाली को छोड़ विश्व का कोई और देश विकास की इस तरह की अभंग परम्परा का प्रदर्शन नहीं कर सकता। ग्रीक व रोमन संसार की ज्ञान यात्रा ईसाई धर्म के उनके समाजों में बलात् प्रवेश से हिंसक विखण्डन का शिकार हुई। इसी प्रकार मिस्र व बैबीलॉन भी भाषा व धर्म, दोनों के भग्न होने की दोहरी मार के शिकार हुए। भारत में भाषा और ज्ञान दोनों ने ही इस अभंग निरन्तरता को युगों से अक्षुण्ण रखा है। (अध्याय IV — संस्कृत एण्ड द ऐस्पिरेशन्स ऑफ इण्डिया; खण्ड 9)

अपने उद्‌गम और प्रकृति के कारण संस्कृत हमें पश्चिम से जोड़ती है, किन्तु प्राचीन व मध्यकाल में भारत को एशिया, चीन और मध्य एशिया से जोड़ने में भी उसकी भूमिका कम सशक्त नहीं रही है। विश्व के ये सभी स्थान भारत और चीन की संस्कृतियों के; यथा, तिब्बत, स्वयं चीन, चीनी सभ्यता के प्रभाव–क्षेत्र के अन्य देश जैसे कोरिया व जापान, ब्रह्मदेश (बर्मा) और स्याम (थाइलैण्ड) जैसे बृहत्तर भारत वाले भू–भाग, पथेट लाओ (लाओस) और कम्बोडिया, चम्पा का देश, मलेशिया और इण्डोनीशिया मिलन–स्थल रहे। श्रीलंका तो खैर भारत का ही एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप है।

पृथ्वी के इन सभी देशों और भूभागों में भारतीय विचार व सभ्यता की वाहिनी के रूप में संस्कृत को अपना एक अन्य धाम प्राप्त हुआ। सभ्यता और संस्कृति की यह यात्रा ईसा के एक हजार वर्ष पूर्व की अन्तिम शताब्दियों तक शान्तिपूर्ण सांस्कृतिक प्रसार के रूप में प्रवाहमयी बनी रही। (अध्याय IV — संस्कृत एण्ड द ऐस्पिरेशन्स ऑफ इण्डिया; खण्ड 18)

अतः संस्कृत से सम्पन्न होने से भारत की स्थिति अनन्य है। मानव जाति व समाज की विभिन्न शाखाओं–उपशाखाओं के बीच भारत एक कड़ी और संश्लेषण भी है। यह सरलता से दिखाई देता है कि संस्कृत भारत के अतीत की समूची संस्कृति को अक्षुण्ण रखे हुए है। यह संस्कृति अपने सभी प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक अन्तर्सम्बन्धों तथा एशिया व यूरोप के संसारों से जुड़ाव सहित कम से कम 4,000 वर्षों तक विकासमान थी। संस्कृत की परम्परा आज भी एक जीवन्त परम्परा है, और उसके विकास का क्रम आज तक अखण्ड है।

(अध्याय IV — संस्कृत एण्ड द ऐस्पिरेशन्स ऑफ इण्डिया; खण्ड 19)

book size: 5.5x8.5 inch_9.3.15

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं देवतम्
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहिनः पशुः।।

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation

D-51, Ist Floor, Hauz Khas, New Delhi - 110016
Phone: 011-26524018, Fax: 011-46089365
E-mail: indiapolicy@gmail.com
Website: www.indiapolicyfoundation.org

ISBN: 978-93-84835-05-7

मूल्यः 50 रुपये